ॐ पतञ्जलि योग दर्शन

पुरुष का प्रमुख उद्देश्य : अथत्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः (सांख्य दर्शन 1/1)						
योग दर्शन के आठ अंग						**संदर्भ - पतञ्जलि योग दर्शन और व्यास भाष्य**
न०	**अंग**	**उप अंग**	**मुख्य कार्यान्वयन**	**परिभाषा**	**फल**	**पक्षीय लेख**
1	यम (बाहरी नियम)	अहिंसा	दिनचर्या	• सभी प्राणीयों के प्रति • सब कालों में • शास्त्रों के अनुकूल • मन, वाणी और शरीर से • अन्यायपूर्वक पीड़ा न देना या वैर की भावना न करना	• अहिंसा के सिद्ध होने पर, योगी की सन्निधी में वैरभाव समाप्त होना	यम और नियम का पालन - • मन, वचन व कर्म से करना चाहिये • जाती, देश, काल और नियम से अविछिन्न • सार्वभोमा यम– नियम का फल- • अविद्यारूपी अशुद्धि का तनु और नाश होना • उक्त से सम्यक ज्ञान का बढ़ना • उक्त से विवेकख्याति की प्राप्ति
		सत्य	दिनचर्या	• अहिंसा की पुष्टि • विषय में जैसा देखा, अनुमान किया व सुना हो, उसे वैसा ही कह देना • न ठगने वाला • न भ्राँति पैदा करने वाला • अभिप्राय व्यक्त करने में समर्थ • प्राणी का उपकार करने वाला	• सत्य के सिद्ध होने पर योगी के कहे हुए वचनों के फल का प्रभाव दूसरों के ऊपर पड़ना	• -
		अस्तेय	दिनचर्या	• अहिंसा की पुष्टि • दूसरों के पदार्थ को, उन की आज्ञा के बिना ग्रहण न करना और न ही उस की इच्छा करना	• अस्तेय के सिद्ध होने पर योगी को सभी प्रकार के उत्तम से उत्तम रत्नों का प्रकट होना	• -
		ब्रह्मचर्य	दिनचर्या	• अहिंसा की पुष्टि • मोक्षकारक शास्त्रों का अध्ययन • गुप्तेन्द्रियों का संयम	• ब्रह्मचर्य के सिद्ध होने पर योगी को अनन्त शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक बल की प्राप्ति होती है	आयुर्वेद के अनुसार सात धातुओं का निर्माण होता है - • रस से रक्त • रक्त से मांस • मांस से मेद • मेद से अस्थि • अस्थि से मज्जा • ३० दिन में मज्जा से ~17.50 ग्राम शुक्र बनता है शुक्र से ओजस बनता है, जो साधना में सहायक होता है

						आठ प्रकार के मैथुन के त्याग से ब्रह्मचर्य पुष्ट होता है - • स्त्री अथवा पुरुष का दर्शन • स्पर्श • एकांत सेवन • भाषण • विषय कथा • परस्पर क्रीडा • विषय का ध्यान • संग
		अपरिग्रह	दिनचर्या	• अहिंसा की पुष्टि • भोग्य पदार्थों में अर्जन, रक्षण, क्षय, संग और हिंसा दोषों को समझ कर, भोग्य पदार्थों का संग्रह न करना	• अपरिग्रह के सिद्ध होने पर योगी को जन्म से सम्बंधित धटनाओं की जानकारी हो जाती है	• -
2	नियम (आंतरिक नियम)	शौच	दिनचर्या	• बाह्य शरीर को मट्टी और जल से शुद्ध करना • पवित्र सात्विक खाना खाना • आभ्यन्तर चित्त के मल को क्रिया योग, अर्थात् तप:, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान से शुद्ध करना	• शौच के सिद्ध होने पर योगी को अपने शरीर के अंगों से घृणा हो जाती है • दूसरों के शरीर से सम्बन्ध बनाने की इच्छा समाप्त हो जाती है • बुद्धि की शुद्धि, बुद्धि की शुद्धि से मन प्रसन्न, प्रसन्न मन से एकाग्रता, एकाग्रता से इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण और पूर्ण नियंत्रण से आत्मसाक्षात्कार करने की योग्यता प्राप्त होती है	• -
		सन्तोष	दिनचर्या	• जीवन निर्वाह के साधनों से अघिक, साधनों की इच्छा का अभाव	• सन्तोष के सिद्ध होने पर योगी को सर्वश्रेष्ठ सुख की प्राप्ति होती है	• -
		तप:	दिनचर्या	• भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि के द्वंद्वों को सहना • मौन • शरीर की क्षमता और अनुकूलता के अनुसार व्रत्त और मौन रखना • तप प्रसन्नता देने वाला हो	• योग सिद्ध होना • क्लेश और शुभ अशुभ कर्मों का शिथिल होकर, विनाश को प्राप्त होना • चित्त को विषय की उन्मुख करने वाली अशुद्धि का शिथिल होकर, विनाश को प्राप्त होना	• -

					• शरीर और इंद्रियों की सिद्धि प्राप्त होना	
		स्वाध्याय	उपासना	• मोक्षकारक शास्त्रों का अध्ययन करना • प्रणव का जप करना	• स्वाध्याय के सिद्ध होने पर योगी को अपने इष्ट देव का साक्षात्कार हो जाता है	• भूत काल में काल, वेग और अंतराय द्वारा परीक्षा
		ईश्वर प्रणिधान	दिनचर्या	• प्रणव अर्थात् ओ३म् और ईश्वर का नित्य वाच्य-वाचक संबन्ध है। उस प्रणव के जप (धारणा) के साथ, ईश्वर के शास्त्रीय अर्थ (ध्यान) से भावना (समाधि) करना • ईश्वर की भक्ति विशेष अर्थात् ईश्वर (शास्त्र) की आज्ञा का पालन करना • स्वाध्याय से समाधि, और समाधि से स्वाध्याय की पुष्टि करना • ईश्वर की सतत्त अनुभूति करते हुऐ आसन, शय्या और मार्ग पर समस्त कर्मों, और उन कर्मों के फल अर्थात् विषय सुख की इच्छा को ईश्वर को समर्पित करना ईश्वर नाम, गुण, कर्म और स्वभाव – • नाम ओ३म् (ॐ) • चेतन पुरुष-विशेष • अविद्या आदि क्लेश, क्लेशों से उत्प्न्न कर्म, कर्मों से उत्प्न्न विपाक और विपाक के आशय से असंबंधित • सर्वज्ञ • काल से अबाधित परम् गुरु • प्रसन्न अर्थात् अविद्या आदि क्लेशों से रहित • अनुपसर्ग अर्थात् जाति, आयु और भोग से रहित • केवल अर्थात् धर्म-अधर्म से रहित • शुद्ध और प्रसन्न अर्थात् त्रिगुण और अविद्या आदि से रहित • अनुग्रहक अर्थात् कल्याणकारी	• निर्मल चित्त की प्राप्ति • एकाग्रता की प्राप्ति • हिंसा आदि वितर्कों का नाश • संसार-बीज अविद्या का नाश • व्याधि और विक्षेप आदि विघ्नों का अभाव • योगी स्वयं अपने में स्थित हो कर, अपने स्वरूप का दर्शन करता है अर्थात् नित्य-मुक्त, आनन्द युक्त, शुद्ध, प्रसन्न, केवल और निर्विकार हो जाता है • प्रणव के गौण हो जाने पर, ईश्वर के भाव में योगी असम्प्रज्ञात समाधि में ईश्वर का साक्षत्कार स्वरूप का दर्शन करता है • अत्यंत शीघ्रता से, समाधि और समाधि का फल अर्थात कैवल्य को प्राप्त होना • तीव्र संवेग से किये गये अधिष्ठान जैसे मंत्र और समाधि और ईश्वर की आराधना का, दृष्ट-जन्म में फल प्राप्त होना	चार महावाक्य - • प्रज्ञानं ब्रह्म (आत्मा ही ब्रह्म है) • तत्वमसि (तुम वही हो) • अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूं) • सर्वम खल्विदं ब्रह्म (सर्वत्र ब्रह्म ही है) ब्रह्म – • शुद्ध / पर ब्रह्म • शबल / सगुण / अपर ब्रह्म - ○ विराट (चेतन तत्त्व + स्थूल जगत) ○ हिरण्यगर्भ (चेतन तत्त्व + सूक्ष्म जगत) ○ ईश्वर (चेतन तत्त्व + कारण जगत)
3	आसन	-	उपासना	• सिद्ध किये हुऐ आसन में बैठ कर अनन्त में समापत्ति करने से, आसन प्रयत्न रहित, स्थिर और सुखदायी हो जाता है	• द्वन्दों की चोट नहीं लगती	• -

4	प्राणायाम	-	उपासना	• श्वाश की गति को देश, काल और संख्या से परिदृष्ट करके, श्वाश का दीर्घ और सूक्ष्म करना • प्रश्वाश की गति का देश, काल और संख्या से परिदृष्ट करके, दीर्घ और सूक्ष्म करना • स्तम्भ-वृत्ति श्वाश और प्रश्वाश की उपेक्षा करके, गति को देश, काल और संख्या से परिदृष्ट करके, दीर्घ और सूक्ष्म करना • चतुर्थ में दोनों श्वाश प्रश्वाश को बाहर और अंदर रोकना	• चित्त को वश में करने करने की क्षमता • धारणा की योग्यता की क्षमता • प्रकाश के आवरण का क्षय होना	
5	प्रत्याहार	-	उपासना	• इंद्रियों की वृत्तियों अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के विषय से सम्बन्ध न रहने से, इंद्रियाँ चित्त के स्वरूप जैसी हो जाना	• इंद्रियों का उत्तम वशीकरण प्राप्त होना	•
6	धारणा	-	उपासना	• चित्त को शरीर में किसी देश विशेष में बांधना	• चित्त की स्थिरता का होना	•
7	ध्यान	-	उपासना	• धारणा में चित्त का निरन्तर एक सा प्रवाह बना रहना	• चित्त की एकाग्रता का होना	•
8	समाधि	-	उपासना	• ध्यान में केवल ध्येय का अर्थ मात्र भासना और स्वयं के स्वरूप से शून्य जैसा प्रतीत होना	• यथार्थ ज्ञान के प्रकाश का उदय होना और वस्तु का यथार्थ ज्ञान होना • स्वयं और ईश्वर का साक्षात्कार होना • क्लेशों का क्षीण होना • कर्म बन्धनों का शिथिल होना • निरोध अभिमुख होना • स्वाध्याय की पुष्टि होना • सिद्धियों की प्राप्ति होना • कैवल्य अथवा मुक्ति जैसा अनुभव होना	•

ॐ पतञ्जलि योग दर्शन

उपासना की विधि			
न०	उपासना के अंग	पक्षीय लेख	अनुदेश
	-	• शुद्धिकरण – ॐ श्री परमात्मने नमः। हम सिद्ध आसन ग्रहण कर के, अपने तीन शरीरों, पाँच कोषों और सात चक्रों को तीन बार आचमन कर के, ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव॥ मंत्र द्वारा शुद्ध करते हैं । नेत्र बंद कर के, सिर से पाँव तक, हम अपने समस्त अंगों को शिथिल और तनाव रहित करते हैं। • आवाहन – हम ईश्वर की समस्त अभिव्यक्तियों और शक्तियों, आदरपूर्वक आवाहन करते हैं । हम सब को नमन और अभिनंदन करते हैं । • परम् लक्ष्य – हम निरन्तर ईश्वर का स्मरण और ध्यान करें, और शीघ्रतम से शीघ्रतम ईश्वर और मोक्ष को उपलब्ध हों । उक्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिये हम चित्त को एकाग्र करके, ईश्वर की उपासना का दृढ़ निश्चय और शुद्ध संकल्प करते हैं। हे ईश्वर, हम अल्पज्ञ और एकदेशिये हैं, आप हमारी उपासना को सिद्ध करें।	• योग उपासना को शाब्दिक अभिव्यक्ति से रहित, केवल आन्तरिक भावना से • ब्रह्म-महूर्त और संध्या में • संभावित विघ्नों से निवृति के पश्चात् • रीढ़ सीधी • किसी सहारे के बिना • उसी समय, वही स्थान • दिशा उत्तर या उत्तर पूर्व या पूर्व
3	आसन	• शुद्धिकरण और आवाहन के पश्चात्, हम शरीर को स्थिर करने के लिये, त्रिनेत्र पर ध्यान केंद्रित कर के, ॐ ख़म ब्रह्म मंत्र द्वारा, अनंत का ध्यान करते हुए, सुख पूर्वक आसन लगा कर, द्वन्दों को हटाते हैं।	• -
4	प्राणायाम	आसन से शरीर को स्थिर करने के पश्चात, हम तीन अथवा इक्कीस बार बाह्य-अभ्यन्तर-विषय-आक्षेपी प्राणायाम के द्वारा चित्त को वश में करने, धारणा की योग्यता बढ़ाने के लिए और प्रकाश के आवरण का क्षय करते हैं । • बाह्य-प्राणायाम - पूरक, रेचक, उड्डीयानबंध, मूलबन्ध, ॐ के जप के साथ क्षमता अनुसार, घबराहट होने तक कुम्भक और फिर पूरक करते हुए क्रमश मूलबन्ध, उड्डीयानबंध खोल कर और तीन समान्य श्वास। • चतुर्थ बाह्य-अभ्यन्तर-विषय-आक्षेपी प्राणायाम - आज्ञा चक्र पर ओ+अम् प्राणायाम अर्थात् मानसिक स्तर पर त्रिनेत्र से “ओ” के साथ श्वास और “अम्” के साथ प्रश्वास को प्रयत्न रहित हो कर, द्रष्टा भाव से देखना, यह चतुर्थ बाह्य-अभ्यन्तर-विषय-आक्षेपी प्राणायाम है। ततपश्चात देश, काल और संख्या द्वारा प्राणायाम दीर्घ और सूक्ष्म हो जाता है।	• बाह्य-प्राणायाम - पूरक, रेचक, उड्डीयानबंध, मूलबन्ध, ॐ के जप के साथ क्षमता अनुसार, घबराहट होने तक कुम्भक और फिर पूरक करते हुए क्रमश मूलबन्ध, उड्डीयानबंध खोल कर और तीन समान्य श्वास। • चतुर्थ बाह्य-अभ्यन्तर-विषय-आक्षेपी प्राणायाम - आज्ञा चक्र पर ओ+अम् प्राणायाम अर्थात् मानसिक स्तर पर त्रिनेत्र से “ओ” के साथ श्वास और “अम्” के साथ प्रश्वास को प्रयत्न रहित हो कर, द्रष्टा भाव से देखना, यह चतुर्थ बाह्य-अभ्यन्तर-विषय-आक्षेपी प्राणायाम है। ततपश्चात देश, काल और संख्या द्वारा प्राणायाम दीर्घ और सूक्ष्म हो जाता है।
5	प्रत्याहार	• प्राणायाम से चित्त को वश में करने के पश्चात्, हम अपनी इंद्रियों की वृत्तियों अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के विषयों, और विषयों की स्मृति से आसक्ति हटा कर, चित्त को आत्मतत्व में लगा कर, स्वयं के शुद्ध चेतन-स्वरूप का ध्यान करते हैं ।	• -
6	धारणा	• प्रत्याहार से चित्त और इंद्रियों की वृत्तियों को वश में करने के पश्चात्, हम चित्त की एकाग्रता के लिये तालु से धारणा (अर्थात् स्मृति-रहित प्रत्यक्ष मनोदैहिक विशेष-ज्ञान की संवेदना) आरम्भ कर के, धारणा को त्रिनेत्र पर स्थित करते हैं। उस के पश्चात् त्रिनेत्र-देश पर अपने चित्त को वृत्ति-मात्र से बांधते हैं, और त्रिनेत्र-देश पर समान-वृत्ति का पुन: पुन: उदय और शान्त होने की अनुभूति करते हैं ।	• -

7	ध्यान	• उस धारणा के परिपक्व और त्रिनेत्र-देश के भान की गौणता होने पर, उक्त अनुभूति के ज्ञान की एकरूपता और अमिश्रित प्रवाह की अनुभूति करते हैं । • उस के पश्चात्, हम द्रष्टा भाव से, हम त्रिनेत्र-देश पर, स्मृति अर्थात् आगम समान्य-ज्ञान से, ॐ के जप के साथ, ॐ के अर्थ की भावना अर्थात् ईश्वर के स्वरूप और गुणों जैसे सर्वव्यापक, सर्वशक्तिशाली, निर्विकार और सर्वज्ञ आदि, अनुभूति की पुन: पुन: भावना करते हैं।	• -
8	समाधि	• सम्प्रज्ञात समाधि – उस ध्यान के परिपक्व होने के पश्चात्, केवल ध्यान के विषय ध्येय का प्रत्यक्ष अर्थात् स्मृति से रहित विशेष-ज्ञान का दर्शन होना, और स्वयं का शून्य जैसे प्रतीत होना समाधि है। • असम्प्रज्ञात समाधि – पर-वैराग्य (अर्थात् विवेकख्याती से भी वैराग्य होने से) से संस्कारों के निरोध होने पर, असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है।	• अस्मिता समाधि से चेतन से प्रतिबिंबत चित्त और बीज-रूप अहंकार की ग्रहित्र भावना के पश्चात असम्प्रज्ञात समाधि। • सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद वितर्क अनुगत समाधि, विचार अनुगत समाधि, आनन्द अनुगत समाधि, और अस्मिता अनुगत समाधि।
	प्रार्थना और समर्पण	• अप्रत्याहार – समाधि के पश्चात्, हम चेतना का प्रसव क्रम अर्थात् वापिस चित्त को प्राण में, और प्राण को शरीर में प्रवेश होने का आदेश देते हैं । हम ईश्वर की उपस्थिति की अनुभूति को उपासना के अन्त तक बनाये रखेगें। • आशीर्वाद की प्रार्थना – ईश्वर और सब उपस्थित देवों, परम् लक्ष्य प्राप्ति के लिए आप हमें समस्त कल्याणकारी गुण की सम्पूर्ण रूप से प्राप्ति और समस्त विघ्नों का सम्पूर्ण रूप से नाश करें ।ॐ विश्वानि देव मंत्र से प्राप्त शक्ति से, हम शरीर का तीन बार मार्जन कर के शुद्ध करते हैं। • क्षमा याचना की प्रार्थना – ईश्वर और उपस्थित देव, हमारी त्रुटियों के लिए हमें क्षमा करें, और लक्ष्य प्राप्ति के लिये हमारी सहायता करें। • सर्व कल्याण की प्रार्थना – ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः। सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ • समर्पण और विसर्जन – हम सब उपस्थित देवों का धन्यवाद करते हैं , और सब से आज्ञा लेतें हैं । हम उपासना को ईश्वर को समर्पित करते हैं। ॐ श्री परमात्मने नमः।	कल्याणकारी गुण – 1. एकाग्र-निरुद्ध चित्त 2. उत्थान के अक्लिष्ट संस्कार 3. यत्नपूर्वक अभ्यास 4. विवेक-युक्त वैराग्य 5. तीव्र संवेग से युक्त श्रद्धा आदि 6. ईश्वर-प्राणिधान 7. मैत्री आदि से चित्त की प्रसन्ता 8. यम-नियम आदि 9. प्रतिपक्ष भावना 10. विवेकख्याति 11. समाधि विघ्न - 1. क्षिप्त-मूढ़-विक्षिप्त चित्त अर्थात् लोभ, क्रोध व मोह 2. व्युत्थान क्लिष्ट संस्कार 3. अविद्या आदि 4. वितर्क आदि के विरोधी भाव 5. नौ व्याधियाँ - • व्याधि (धातु अर्थात् वात, पित्त और कफ, और रस अर्थात् रस से ओज) अर्थात् रोग और इंद्रियों की विषमता • स्त्यान अर्थात् चित्त की अकर्मण्यता • संशय अर्थात् सन्देह • प्रमाद अर्थात् लापरवाही • आलस्य अर्थात् चित्त और शरीर की सुस्ती • अविरित अर्थात् विषयों में ईच्छा और राग • भ्रान्तिदर्शन अर्थात् विपरीत ज्ञान • अलब्धभूमिकत्व अर्थात् समाधि की भूमि की प्राप्ति न होना

			• अनवस्थितत्व अर्थात् समाधि को स्थिर न रख पाना 6. चार विक्षेप हैं, जो नौ व्याधियाँ के साथ होतें हैं – • दुःख • दौर्मनस्य अर्थात् इच्छापूर्ति न होने से उत्पन्न क्षोभ • अङ्गमेजयत्व अर्थात् अंगों में कम्पन होना • श्वास अर्थात् इच्छा के विरुद्ध श्वास का अपने आप अन्दर आ जाना और प्रश्वास अर्थात् इच्छा के विरुद्ध श्वास का अपने आप बाहर निकल जाना

ॐ पतञ्जलि योग दर्शन

स्वाध्याय			
न०	**विषय**	**उप विषय**	**विवरण**

1	मुख्य अध्यात्म ज्ञान	मुख्य विषय	विषय -
			• चेतन तत्त्व –
			  ○ पुरुष विशेष अर्थात् ईश्वर
			  ○ पुरुष अर्थात् आत्मा
			• जड़ तत्त्व
			  ○ प्रकृति

		योग दर्शन का सिद्धान्त	○ हेय: त्यागने योग्य दुःख अर्थात् प्रकृति द्वारा निर्मित शरीर, सांस्कारिक सम्बन्ध और सांस्कारिक सुख क्षणिक, दुःख-मिश्रित है, और निश्चित ही त्यागने (अर्थात् अनासक्ति) के योग्य है। (हेयं दुःखमनागतम् (२।१६)) ○ हेयहेतु: द्रष्ट और दृष्य का अविवेकपूर्ण संयोग। (द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः (२।१७)) ○ हान: अविवेकपूर्ण संयोग अर्थात् अदर्शन का आभाव। (तस्य हेतुरविद्या (२.२४)) ○ हानोपाय: परिपक्व-विवेकख्याति अर्थात् धर्ममेघ समाधि में चेतन-पुरुष और जड़-चित्त का भेद होने का विवेक। (विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः (२।२६)) (तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् (२।२५))

		वाद	• सांख्य (महर्षि कपिल मुनि) -
			  ○ चेतन
			  ○ जड़
			  ○ आत्मा
			• निर्विशेष अद्वैत (श्री शंकर, जैसे रस्सी में भ्रान्ति) –
			  ○ चेतन
			• विशिष्ट अद्वैत (श्रीरामानुज, जैसे वृक्ष की शाखाएं ,पत्ते और फल और फूल) –
			  ○ चेतन -
			    ▪ आत्मा, चेतन का शरीर
			    ▪ माया, चेतन का शरीर
			• शुद्धाद्वैता (श्रीवल्लभाचार्य) -
			  ○ चेतन -
			    ▪ माया, चेतन की शक्ति
			    ▪ आत्मा, चेतन का अंश
			द्वैत (श्रीमध्वाचार्य, ब्रह्म निमित्त कारण प्रकृति उपादान कारण) –
			  ○ चेतन -
			    ▪ आत्मा, चेतन से भिन्न
			    ▪ जड़, चेतन से भिन्न
			• द्वैतअद्वैत (श्रीनिम्बकाचार्य, समुन्द्र और उसकी बूँद) –
			  ○ चेतन -
			    ▪ जड़, चेतन की इच्छा से, चेतन में
			    ▪ आत्मा, चेतन की इच्छा से, चेतन में
			• जड़ अद्वैतवाद (श्रीचावार्क)
			  ○ जड़

		चार वेद और उन के चार उपवेद	• ऋग्वेद का आयुर्वेद • यजुर्वेद का धनुर्वेद • सामवेद का गान्धर्ववेद • अथर्ववेद का शिल्पवेद

		ग्यारह मुख्य उपनिषद	• ईशावास्योपनिषद • केनोपनिषद् • कठोपनिषद् • प्रश्नोपनिषद् • मुण्डकोपनिषद् • माण्डूक्योपनिषद् (चेतना की तीन अवस्थाएँ और ॐ) • ऐतरेयोपनिषद् • तैत्तरीयोपनिषद् (पंचकोश) • श्वेताश्वतरोपनिषद् • बृहदारण्यकोपनिषद् • छान्दोग्योपनिषद्

		छः दर्शन शास्त्र का युगल	• सांख्य (महर्षि कपिल) और योग (महर्षि पंतञ्जलि) : योग दर्शन और सांख्य दर्शन, महर्षि पतंजलि और महर्षि कपिल द्वारा प्राणित है। योग दर्शन का भाष्य महर्षि व्यास ने किया है। योग दर्शन के चार पाद, जिनमें कुल 195 सूत्र हैं –
			  ○ समाधिपाद में 51 सूत्र
			  ○ साधनपाद में 55 सूत्र
			  ○ विभूतिपाद में 55 सूत्र
			  ○ कैवल्यपाद में 34 सूत्र
			• न्याय (महर्षि गौतम) और वैशेषिक (महर्षि कणाद)
			• उत्तर-मीमांसा (महर्षि जैमिनी) और पूर्व-मीमांसा (महर्षि बादरायण)

		शेष	• प्रकरण ग्रंथ, गीता, रामायण, भागवत, 18 पुराण (ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्म वैवर्त पुराण, लिङ्ग पुराण, वाराह पुराण, स्कन्द पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, गरुड़ पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण)
		श्रवणचतुष्टय विधि	• श्रवण • श्रवण से मनन • मनन से निदिध्यासन • निदिध्यासन से साक्षात्कार

3	पुरुष	गुण	• चितिशक्ति अर्थात् चेतना, पुरुष अयम् आत्मा ब्रह्म, ईश्वर का सजातीय तत्त्व
			• नित्य अपरिणामिनी अर्थात् धर्म, लक्षण और अवस्था के परिणाम से रहित
			• अप्रतिसंक्रमा अर्थात् जड़ और चित्त के मिश्रण से रहित
			• दर्शितविषया अर्थात् जड़-चित्त का द्रष्टा
			• शुद्ध अर्थात् एकतत्त्व और प्रसन्न अर्थात् अविद्या आदि से रहित
			• अनन्ता अर्थात् नाश रहित
			• अनुपसर्ग अर्थात् जाति, आयु और भोग से रहित
			• बुद्धि का प्रतिसंवेदी
			• केवल अर्थात् धर्म-अधर्म से रहित
			• नित्य-मुक्त, आनन्द युक्त, शुद्ध, प्रसन्न, केवल और निर्विकार
			• आकार, शील और विद्या
			• एकदेशीय और अल्पज्ञ
			• आत्मा के लक्षण -
			  ○ स्वभाविक गुण -
			    ▪ ज्ञान - सुख और दुःख, सुख प्राप्ति और दुःख को हटाने का
			    ▪ इच्छा - सुख प्राप्ती और दुःख को हटाने का
			    ▪ द्वेष

			▪ प्रयत्न - सुख प्राप्ति और दुःख को हटाने का ○ निमित्त से उत्पन्न गुण - ▪ सुख ▪ दुःख ▪ ज्ञान ▪ इच्छा ▪ द्वेष ▪ प्रयत्न
		चेतना की तीन अवस्थाएँ	• जागृत में स्थूल शरीर में, अर्थात् अन्नमय कोष और प्राणमय कोष में, 7 अंगों (सिर, नेत्र, कान, प्राण, वाणी, पेट और पांव) और 19 मुखों (पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच प्राण और चार अन्तःकरण) से, कर्मों का कर्ता व फल का भोक्ता उपासक विश्व और उसका उपास्य विराट (अर्थात् ब्रह्मा रूप में उत्पत्ति) है, वह ॐ का आकर है। • स्वप्न में सूक्ष्म शरीर में, अर्थात् मनोमय कोष और विज्ञानमय कोष में, , 7 अंगों (सिर, नेत्र, कान, प्राण, वाणी, पेट और पांव) और 19 मुखों (पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच प्राण और चार अन्तःकरण) से, भोक्ता उपासक तैजस और उसका उपास्य हिरण्यगर्भ (अर्थात् विष्णु रूप में स्थिति) उपास्य है, वह ॐ का उकार है। • सुषुप्ति में कारण शरीर में, अर्थात् आन्दमय कोष में, अकर्त्ता और अभोक्ता उपासक प्रज्ञा और उसका उपास्य ईश्वर (अर्थात् महेश रूप में प्रलय) है, वह ॐ का मकार है। चौथी तुरीय, जो उक्त तीनों को धारण करती है, जिसका साक्षी उपासक शुद्ध आत्मा और उपास्य शुद्ध ब्रह्म है, वह ॐ का अमात्र विराम है।
4	प्रकृति	तीन गुण	• सत्त्व अर्थात् सुख, ज्ञान और प्रकाश • रजस अर्थात् इच्छा, चंचलता और क्रिया • तमस अर्थात् अज्ञान, जड़ता और स्थिति
		गुणों की दो अवस्थायें	• सम अर्थात् प्रलयकाल में सम में सम रहनें की अवस्था • विषम अर्थात् उत्पत्तिकाल में विषम अवस्था
		प्रयोजन	• ईश्वर के अनुग्रह से, नित्य-परिणामी जड़ प्रकृति, स्वामी पुरुष के लिये, उस के कर्मों के अनुसार, भोग और अपवर्ग का प्रयोजन करती है
		छब्बीस तत्त्व और उन का प्रसव क्रम	• प्रधान अर्थात् प्रकृति के तीन गुणों की सम अवस्था • प्रधान से सत्त्व-प्रधान महत् अथवा बुद्धि - ○ महत् से सत्त्व प्रधान अहंकार - ▪ अहंकार से सत्त्व-प्रधान चित्त ▪ अहंकार से रजस-प्रधान – • पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ अर्थात् नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा और कर्ण • पाँच कर्मेन्द्रियाँ अर्थात् वाक्, हस्त, पाद, गुदा और उपस्थ ▪ अहंकार से तमस-प्रधान पाँच तन्मात्राएँ अर्थात् शुद्ध गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द • तन्मात्राओं से तमस-प्रधान पाँच महाभूत अर्थात् पंचीकृत आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी हैं आत्मा, ईश्वर और प्रकृति (26), कुल अट्ठाईस तत्त्व हैं। शिव-सूत्र के अनुसार, महत् से अहंकार तक, शक्ति का संकोचन, इन तीन मलों द्वारा होता हैं - • समष्टि-माया से व्यष्टि-अविद्या • आणव अथवा एकदेशीय होना - ○ देश

			◦ काल ◦ नियति ◦ विद्या ◦ राग • कर्त्तत्व-भोगतृत्व
		गुणपर्व	चारों गुणों की सूक्ष्म से स्थूल होने की अवस्था विशेष होने से गुणपर्व कहलाते हैं - • अनित्य अवस्था, जो पुरुष के लिए भोग और अपवर्ग का प्रयोजन करती है - ◦ विशेष - पांच स्थूलभूत, पांच ज्ञानन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और मन, यह सोलह विकार ◦ अविशेष - पांच तन्मात्र और अहंकार, यह छ: विकार ◦ लिङ्गमात्र - महत् • नित्य और कारण रहित अवस्था - ◦ अलिङ्ग - प्रकृति के तीन गुणों की सम अवस्था
		प्रकृतियाँ और विकृतयाँ	• पांच स्थूलभूत, पांच ज्ञानन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और मन, यह सोलह का नाम विकृतयाँ, जो व्यक्त है और उन के आगे कोई नया तत्त्व उत्पन्न नहीं होता है • अलिङ्ग, लिङ्गमात्र, अहंकार और पांच तन्मात्र, यह आठ का नाम प्रकृतियाँ, जो अव्यक्त है और उन के आगे कोई नया तत्त्व उत्पन्न होता है
		समूह	• युतसिद्धावयव अर्थात् वन आदि, जो पृथक अव्ययों का समूह, जैसे रेत के ढेर के समूह से एक कण को उठाने से दूसरे कण वहीं रहने है • अयुतसिद्धावयव अर्थात् वृक्ष आदि जो पृथक न होने वाले अव्ययों का समूह, जैसे वस्त्र के एक कोने को खींचने से सारा वस्त्र खींचता है। अयुतसिद्ध अव्यय भेदों में रहने वाले, सामान्य और विशेष के समूह को द्रव्य कहते है
		शरीर के पाँच कोष और तीन शरीर	• स्थूल शरीर - ◦ शीत और तप उर्मी ◦ अन्नमय ◦ स्थूल शरीर के तत्त्व – ▪ पांच भूत ▪ पांच तन्मात्रा • सूक्ष्म शरीर - ◦ प्राणमय में भूख और प्यास उर्मी ◦ मनोमय में लोभ और मोह उर्मी ◦ विज्ञानमय ◦ सूक्ष्म शरीर के तत्त्व – ▪ भौतिक सूक्ष्म शरीर 18 तत्वों अर्थात बुद्धि, अहंकार, मन, पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियों और पांच तन्मात्राएं हैं ▪ अभौतिक सूक्ष्म शरीर में 24 शक्तियां अर्थात बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन और गंध ग्रहण तथा ज्ञान हैं। जीवात्मा अपने अभौतिक सूक्ष्म शरीर के साथ मोक्ष में रहता है • कारण शरीर - ◦ आनंदमय • आत्मा
		सात चक्र	मेरुदण्ड के आधार से सिर की शिखा तक क्रमश: सात चक्र – • मूलाधार • स्वाधिष्ठान

			• मणिपुर • अनाहत • विशुद्धि • आज्ञा • सहस्त्रार मेरुदण्ड में नाड़ियां – • सुषुम्ना, मध्य में • इड़ा, बायीं ओर स्थित • पिंगला, दाहिनी ओर स्थित आज्ञा-चक्र में सुषुम्ना, इड़ा और पिंगला नाडियों का संगम होता है, जिसे युक्त-त्रिवेणी कहा जाता है।
		स्थूल शरीर	स्थूल शरीर को स्वस्थ रखने के लिये सूर्य नमस्कार के साथ आठ आसन और उन के विपरीत आसन – • तीन, बारह अथवा सताइस बार सूर्य नमस्कार • अर्धसर्वांगासन और मत्स्यासन • हलासन और अर्धचक्रासन • पश्चिमोत्तासन और उष्टासन के पश्चात • अर्धमत्स्येन्द्रासन और शवासन
		प्राण	प्राण ऊर्जा 72,000 सूक्ष्म नाड़ियों में संचालित होती हैं। पाँच मुख्य-प्राण - • प्राण जो नासिका से हृदय तक • अपान प्राण जो नाभि से पैरों तक • समान प्राण जो हृदय से नाभि तक • उदान प्राण जो कण्ठ से शिर तक • व्यान प्राण जो पूरे शरीर की नाडिय़ों में रहता है पाँच उप-प्राण – • नाग प्राण जो कण्ठ से मुख तक • कूर्मा प्राण जो मुख के नेत्र गोलक में • कृकला प्राण जो मुख से हृदय तक • देवदत्त प्राण जो नासिका से कण्ठ तक • धनन्जय प्राण जो सम्पूर्ण शरीर में व्यापक रहता है कपालभाति, भस्त्रिका और अनुलोमविलोम आदि स्थूल प्राणायाम हैं-
		चित्त की पाँच अवस्थाएँ	• क्षिप्त जो रजस-प्रधान अर्थात् ऐश्वर्य और विषय की इच्छा • मूढ़ जो तमस-प्रधान अर्थात् अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य में मग्न • विक्षिप्त जो सत्त्व-प्रधान + रजस अर्थात् धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य अभिमुख • एकाग्र (अधिकार पूर्वक स्थिर) जो सत्त्व-प्रधान अर्थात् विवेकख्याति को प्राप्त • निरुद्ध में संस्कार-मात्र शेष से आत्मा का साक्षात्कार के पश्चात पर-वैराग्य के द्वारा असम्प्रज्ञात समाधि (अर्थात् चित्त के समस्त वृत्तियों का रुकना और मोक्ष जैसा अनुभव होना) प्राप्त होती है एकाग्र और निरुद्ध अवस्था केवल योगियों को अभ्यास और वैराग्य द्वारा प्राप्त होती हैं।
		चित्त की पाँच प्रकार की वृत्तियाँ	व्युत्थान काल में, विषयों की सन्निधि से चित्त में शान्त, घोर और मूढ़ वृत्तियाँ बनती हैं, और चित्त की सन्निधि से पुरुष में, चित्त के विषय-ज्ञान के प्रतिबिम्ब की प्रतीती होती है अर्थात् द्रष्टा पुरुष भी चित्त की वृत्तियों के जैसा प्रतीत होता है।

			○ प्रमाण –
			  ○ प्रत्यक्ष-प्रमाण जैसे रस्सी में रस्सी का ज्ञान। प्रत्यक्ष में विशेष-ज्ञान प्रमुख और समान्य-ज्ञान गौण होता है। प्रत्यक्ष वृत्ति, शेष वृत्तियों अर्थात् अनुमान, आगम, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति वृत्तियों का आधार है।
			  ○ अनुमान-प्रमाण में कार्य-कारण के संबन्ध से ज्ञान को अनुमान ज्ञान कहते है। अनुमान में समान्य-ज्ञान प्रमुख, और विशेष-ज्ञान गौण होता है।
			    ▪ पूर्ववत-अनुमान में कार्य को देख कर कारण का ज्ञान जैसे अग्नि से धूम की उत्पत्ति का अनुमान
			    ▪ शेषवत-अनुमान में कारण को देख कर कार्य का ज्ञान जैसे धूम को देखकर अग्नि का अनुमान
			    ▪ समान्यदृष्ट-अनुमान में कार्य और कारण श्रृंखला का ज्ञान जैसे नदी के ऊफान से वर्षा, और वर्षा से बादलों का ज्ञान होना, यह तीन प्रकार के अनुमान हैं।
			  ○ आगम-प्रमाण अर्थात् आप्त-पुरुष के वचन से यथार्थ ज्ञान जैसे शास्त्र।
			  ○ ऋतम्भरा-प्रज्ञा, जो निर्विचार की उच्चतम अवस्था है, वह केवल सत्य को ही ग्रहण करती है और उसमें असत्य या विपरीत ज्ञान का लेश मात्र भी अंश नही होता है।
			○ विपर्यय, अर्थात् मिथ्या ज्ञान, संशय और अविद्या आदि, जिसमे कुछ अंश सत्य का भी होता है, जैसे रस्सी में साँप का भ्रम
			○ विकल्प, अर्थात् वस्तु-शून्य शब्द जैसे अग्नि की गर्मी
			○ निद्रा अर्थात् सुषप्ति में ज्ञान के आभाव की प्रतीति के पश्चात सुख, दुःखः अथवा मूढ़ निन्द्रा की प्रतीति
			○ स्मृति, अर्थात् अनुभव में आए हुए विषयों का न भूलना है। संस्कार से वृत्ति, वृत्ति से स्मृति और स्मृति से संस्कार चक्र अनादि है। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति से स्मृति का निर्माण होता है। स्मृति दो प्रकार की है -
			  ○ भावित स्मर्तव्य स्मृति जो स्मृति की काल्पनिक स्मृति जैसे स्वप्न काल; और
			  ○ अभावित स्मर्तव्य स्मृति जो जाग्रत काल में होती हैं, यह दो प्रकार की स्मृति है।
			
			चित्त की दो प्रकार वृत्तियाँ -
			○ क्लिष्ट अविद्या आदि क्लेशों, कर्माशय की उत्पत्ति में सहायक। चित्त की क्लिष्ट वृत्तियाँ, क्लेशों को उत्पन्न करती हैं।
			○ अक्लिष्ट ख्याति-विषय और गुण-अधिकार की विरोधी वृत्तियाँ हैं, जैसे ज्ञान, धर्म और वैराग्य से युक्त वुत्तियाँ
			
			सत्त्व-प्रधान चित्त, जड़ प्रकृति से निर्मित है। चित्त की ज्ञान की वृत्तियाँ अर्थात् चित्त का परिदृष्ट धर्म, इच्छा और प्रयत्न के बिना किसी अनवांछित विषय में स्वयं नही लग सकता। चित्त की आगन्तुक चंचलता से, चित्त की प्राकृतिक स्थिरता बलवान होती है।

		अंतःकरण चतुष्टय	चित्त के कार्य – • विषयों की वृत्ति के परिपेक्ष से, मन से संकल्प और विकल्प • बुद्धि से निश्चयात्मक • चित्त से स्मृति और संस्कार • अहंकार से अहम् और ममत्व
		चित्त के सात अपरिद्रष्ट धर्म	जो अनुमान से जाने जाते हैं - ○ निरोध ○ धर्म ○ संस्कार ○ परिणाम ○ जीवन ○ चेष्टा ○ शक्ति

			चित्त के झुकाव के कारण - ○ पूर्व संस्कार ○ महत्त्व ○ रुचि ○ लाभ ○ शरीर और मन ○ अभ्यास
		परिणाम	प्रकृति में आधार रूप धर्मी में गुणों के कार्य-कारण संबन्ध से धर्म से लक्षण परिणाम, लक्षण से अवस्था परिणाम, जो चित का अभिभव अर्थात् संस्कारो का वर्तमान से भूत में दबना, और प्रादुर्भाव अर्थात् संस्कारो का अनागत से वर्तमान में प्रकट होना, जो भूत और इन्द्रियों में होता है, यह परिणाम हैं - ○ पूर्व धर्म की निवृत्ति और नये धर्म की प्राप्ति की संभावना, यह धर्म-परिणाम है। ○ अनागत-लक्षण-परिणाम में धर्म का वर्तमान में प्रकट होने से पहले भविष्य में छिपा रहना; वर्तमान-लक्षण-परिणाम में धर्म का भविष्य को छोड़ कर वर्तमान में प्रकट होना; और अतीत-लक्षण-परिणाम में धर्म का वर्तमान को छोड़ कर भूतकाल में छिप जाना, यह लक्षण-परिणाम हैं। ○ अनागत-लक्षण-परिणाम से वर्तमान-लक्षण-परिणाम में धर्म का प्रतिक्षण दृढ होना; और वर्तमान-लक्षण-परिणाम से अतीत-लक्षण-परिणाम में धर्म का प्रतिक्षण दुर्बल होना, यह अवस्था-परिणाम है।
		समाधि	यत्न-पूर्वक अभ्यास और विवेक-युक्त वैराग्य से चित्त में तीन प्रकार के परिणाम – ○ एकाग्रता-परिणाम - एक ही ध्येय विषय की पुन: पुन: समान वृत्ति प्रादुर्भाव और अभिभव होना, एकाग्रता-परिणाम है, जिस से सम्प्रज्ञात समाधि अथवा सबीज़ समाधि से आत्म-दर्शन होता है ○ समाधि-परिणाम - सर्वार्थता का अभिभव और एकाग्रता का प्रादुर्भाव होना, समाधि-परिणाम है ○ निरोध-परिणाम - व्युत्थान अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि का अभिभव और निरोध संस्कारों का प्रादुर्भाव होना, निरोध-परिणाम है, जिस से असम्प्रज्ञात समाधि अथवा निर्बीज समाधि से ईश्वर दर्शन होता है एकाग्र चित्त अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि का फल – ○ वस्तु का यथार्थ ज्ञान ○ क्लेशों को क्षीण ○ कर्म बन्धनों को शिथिल ○ निरोध अभिमुख
		विवेकख्याति	• एकाग्र चित्त से विवेकख्याति अर्थात् चेतन पुरुष और जड़ चित्त की भिन्नता का ज्ञान प्राप्त होता है। धर्ममेघ समाधि में स्थायी विवेकख्याति होती है।
		सम्प्रज्ञात समाधि	• सम्प्रज्ञात, सालंबन अथवा सबीज समाधि अर्थात् पुनर्जन्म की बीज़ रूपी अविद्या अथवा आलंबन सहित - भावना-विशेष सम्प्रज्ञात अथवा सबीज समाधि के अन्तर्गत वितर्क (अर्थात् सवितर्क और निर्वितर्क), विचार (अर्थात् सविचार और निर्वितर्क), आनन्द और अस्मिता, यह छ: प्रकार की समाधियाँ हैं। समाधि में चित्त की अवस्था विशेष को समापत्ती कहते हैं। ○ वितर्क समाधि से स्थूल विषय अर्थात् पाँच भूतों और स्थूल इन्द्रिय विषयक की ग्राह्य भावना; ○ वितर्क समाधि में सवितर्क अर्थात् स्थूल विषय में शब्द-अर्थ-ज्ञान के विकल्प से सहित; और ○ निर्वितर्क समाधि अर्थात् स्मृति शुद्ध होने से सूक्ष्म विषय में शब्द-अर्थ-ज्ञान के विकल्प से रहित, श्रुत-अनुमान से रहित, अवयवी रूप में केवल अर्थमात्र भासना और स्वरूप शून्य जैसा होता है ○ विचार समाधि से ग्रहण सूक्ष्म विषय अर्थात् पाँच तन्मात्राओं और सूक्ष्म इन्द्रिय विषयक की ग्राह्य भावना; ○ सविकल्प अथवा सविचार समाधि में सविचार अर्थात् सूक्ष्म विषय में देश, काल और निमित्त / धर्म अर्थात् धर्मी के विकल्प सहित ○ निर्विकल्प अथवा निर्विचार समाधि अर्थात् स्मृति शुद्ध होने से विचार में देश, काल और निमित्त / धर्म के विकल्प रहित होता है। निर्विचार समाधि से सत्य को धारण करने वाली और व्युत्थान

			के संस्कारो को रोकने वाली ऋतम्भरा-प्रज्ञा, जो निर्विचार की उच्चतम अवस्था है, की प्राप्ति होती है ○ आनन्द समाधि से अध्यात्म-प्रसाद से उत्पन्न सुख और सोलह तत्त्वों की ग्रहण भावना (विदेह) ○ अस्मिता समाधि से चेतन से प्रतिबिंबत चित्त और बीज-रूप अहंकार की ग्रहित्र भावना (प्रकृतिलय)
		असम्प्रज्ञात समाधि	• पर-वैराग्य (अर्थात् विवेकख्याती से भी वैराग्य होने से) से संस्कारों के निरोध होने पर, असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है। असम्प्रज्ञात समाधि के पश्चात कैवल्य में, चित्त अपने कारण में लीन हो जाता है। कैवल्य का काल 311,040,000,000,000 (अर्थात् 31 नील 10 खरब और 40 अरब), जिसमें सृष्टि 36,000 बार उत्पन्न और प्रलय होती है।
		संयम	धारणा, ध्यान और समाधि की प्रक्रिया को संयम कहते है। समाधि में ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी का लय हो जाता है। संयम से प्राप्त सिद्धियों से राग और अभिमान करने से योग में बाधा होती है। संयम को प्रतिदिन चौबीस मिनट से ले कर दो घण्टे और चालीस मिनट तक करना चाहिये।
		कर्माशय	चार प्रकार कर्मों से कर्माशय बनता है जो कर्माशय परिपक्व होने पर, प्रमुख वासना के अनुसार जन्म-मृत्यु चक्र प्रदान करता है - ○ कृष्ण कर्म अर्थात् पाप कर्म जो दुष्ट पुरुषों द्वारा किये गए पाप कर्म ○ शुक्ल-कृष्ण कर्म अर्थात् पाप-पुण्य मिश्रित कर्म जो बाह्य साधन जैसे शारीरिक और वाचिक साधनों द्वारा किये गये कर्म, जिस से दूसरे को पीड़ा और उपकार हो ○ शुक्ल कर्म अर्थात् पुण्य कर्म जैसे शास्त्र-विहित तप, स्वाध्याय और ध्यान आदि मानसिक कर्म, जो बाह्या साधनों के बिना किये गए हों, और जिस से दूसरे को पीड़ा न पहुँचे ○ अशुक्ल-अकृष्ण अर्थात् न पाप और न पुण्य कर्म जो क्षीण क्लेशों वाले और अन्तिम देह वाले योगी के द्वारा, शास्त्र-विरुद्ध पाप कर्म को न करना और कर्म-फल सन्यास के अपनाने से होता है
		वासनाओं	इन वासनाओं का - ○ हेतु अविद्या है ○ फल जाति, आयु और भोग है ○ आश्रय अधिकार-सहित चित्त है ○ आलंबन इंद्रियों के विषय हैं अविद्या चक्र के छः आरें – ○ धर्म ○ अधर्म ○ राग ○ द्वेष ○ सुख ○ दुःख
		दृष्टजन्मवेदनीय और अदृष्टजन्मवेदनीय कर्म	○ दृष्टजन्मवेदनीय कर्म इसी जन्म में आयु अथवा भोग, अथवा दोनों आयु और भोग फल देने वालें होते हैं ○ अदृष्टजन्मवेदनीय कर्म अगले किसी जन्म में जाति, आयु और भोग फल देने वालें होते हैं, वो नियत-विपाक और अनियत-विपाक हैं ○ जिन कर्मों का फल अति शीघ्र प्राप्त होता है, उन को सोपक्रम कहते हैं ○ जिन कर्मों का फल विलम्ब से प्राप्त होता है, उन को निरूपक्रम कहते हैं
		कर्म फल की प्राप्ति	○ तीव्र संवेग से किये गये पुण्य कर्म जैसे मँत्र, तप और समाधि का अधिष्ठान, ईश्वर, देवता और महर्षि की आराधना का दृष्ट-जन्म में फल प्राप्त होता है ○ अविद्या आदि क्लेशों से युक्त किये गये पाप कर्म जैसे डरे हुऐ, रुग्ण, दयनीय, विश्वाश को प्राप्त और तपस्वियों के प्रति हानि करना, दृष्ट-जन्म में फल प्राप्त होता है

		तीन प्रकार कर्माशय के भाग	○ संचित अर्थात् असंख्य जन्मों में किए हुऐ कर्म ○ प्रारब्ध या भाग्य अर्थात् संचित का एक अंश, जो भोगा जा रहा है, वह मंद, मध्यम अथवा तीव्र हो सकता है ○ क्रियमाण अर्थात् वर्तमान में किया जाने वाले कर्म ○ मनुष्य कर्म करने में तो स्वतंत्र है, परन्तु फल भोगने में परतंत्र है।
		तीन प्रकार के कर्म के साधन	○ मन ○ वाणी ○ शरीर
		तीन प्रकार के कर्म	○ कृत ○ कारित ○ अनुमोदित

		अविद्या	अविद्या – अविद्या से अस्मिता, अस्मिता से अविद्या-पूर्वक राग, राग से अविद्या-पूर्वक द्वेष, द्वेष से अविद्या-पूर्वक अभिनिवेश की उत्तपत्ति होती है। अविद्या के पाँच अन्य नाम तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अंधतामिस्र हैं। अविद्या के नही होने से कर्माशय का विपाक नही हो सकता। मूल हेतु अविद्या पाँच क्लिष्ट संस्कारों की उत्पत्ति करती है, वह पाँच प्रकार की है –
			○ अविद्या –
			  ○ अनित्य में नित्य, जैसे सूर्य चंद्र आदि को नित्य मानना
			  ○ अशुचि में शुचि, जैसे परम् बीभत्स काया का –
			    ▪ स्थानात अर्थात् योनि
			    ▪ बीजात अर्थात् रज और वीर्य
			    ▪ उपष्टम्भात अर्थात् खाये पीये भोजन का परिपाक
			    ▪ नि:स्यन्दात अर्थात् छिद्रों से अपवित्र पदार्थों का निकलना
			    ▪ निधनात अर्थात् मरना
			    ▪ आधेयशौचत्वात अर्थात् शरीर शुद्धी की सर्वथा अपेक्षा
			  ○ दुःख में सुख अर्थात् परिणाम-ताप-संस्कार दु:ख
			  ○ अनात्म में आत्म का भाव –
			    ▪ जड़ पदार्थों में
			    ▪ आधार शरीर में
			    ▪ शरीर के साधनों में
			○ अस्मिता जो बीज-रूप अहंकार है, उससे दृग् और दर्शन शक्तियों की अविद्याजन्य एकात्मता
			○ राग अर्थात् सुख की वासना (विषय की उपस्थिति) से उत्पन्न तृष्णा (भ्रम+ इच्छा) अथवा आसक्ति
			○ द्वेष अर्थात् दुःख की प्राप्ति (विषय की अनुपस्थिति) की निन्दा और क्रोध द्वारा विरोध
			○ अभिनिवेश अर्थात् शरीर की मृत्यु का भय

		अविद्या के चार परिणाम	○ उदार अवस्था से गुणों को अधिकार को बलवान करना ○ गुणों के कार्यरूप परिणाम चलाना ○ प्रकृति के कार्य-कारण परम्परा को बढ़ाना ○ परस्पर अनुग्रह करके कर्म का विपाक करना
		क्लेशों की पाँच अवस्थाऐं	○ प्रसुप्त क्लेश अर्थात् सुप्त अवस्था, जैसे बालक में वासना के प्रसुप्त क्लेश ○ तनु क्लेश अर्थात् समाधि से निर्बल कर दिये गए, जैसे क्रियायोग द्वारा निर्बल कर दिए गए क्लेश ○ विच्छिन्न अर्थात् वर्तमान में दबे हुऐ और बीच बीच में उदार अवस्था को प्राप्त होना, जैसे राग में द्वेष का अभाव, और द्वेष में राग का अभाव होना ○ उदार क्लेश अर्थात् जो आलम्बन द्वारा वर्तमान में फल प्रदान करना ○ दग्ध-बीज़ क्लेश अर्थात् जब चरमदेह योगी, विवेकख्याति और समाधि द्वारा, क्लेशों की अंकुरित होने की शक्ति को नष्ट कर देता है
		दु:ख	○ यह शरीर और विषय छ: षड्विकारों अर्थात् -

			○ अस्ति अर्थात् अस्तित्व ○ जायते अर्थात् उत्पन्न होना ○ वर्धते अर्थात् बढ़ना ○ विपरिणमते अर्थात् विकार ○ अपक्षीयते अर्थात् वृद्धावस्था ○ विनश्यतीति अर्थात् विनाश से युक्त
		परिणाम-ताप-संस्कार दुःख	○ परिणाम-दुःख अर्थात् भोग के पश्चात इच्छा का शांत न होना। ○ ताप-दुःख अर्थात् सुख की अपूर्णता और सुख प्राप्ति में विघ्नों का दुःख। ○ संस्कार-दुःख अर्थात् वस्तु का सुख लेने के पश्चात सुख का न मिलना। ○ सत्त्व (अर्थात् सुख वृत्ति), रज (अर्थात् दुःख वृत्ति) और तम (अर्थात् मूढ़ वृत्ति) गुणों की वृत्तियों के परस्पर विरोधी भाव दोषों से युक्त हैं।
		स्वाध्याय अर्थात् निदिध्यासन का विश्लेषण	○ भूतकाल की दिनचर्या में कल्याणकारी गुणों और विघ्नो को काल, वेग और अंतराल की कसौटी पर समीक्षा करने के पश्चात, सुधार करने का प्रयत्न करना। ईश्वर अयुक्त भोग में भय, शंका और लज्जा, और युक्त भोग में उत्साह, निर्भिकता और आनन्द मनोभाव उत्पन्न कर के स्वतंत्र-पुरुष को प्रेरित करता है।
		वैराग्य	○ दृष्ट अर्थात् भोगे विषय जैसे अन्न-पान, पुरुष-स्त्री और ऐश्वर्य (अर्थात् पुत्रेष्णा, वित्तेषणा और लोकेषणा) की तृष्णा। ○ अनुश्रविक अर्थात् न भोगे हुए दृष्ट विषय जैसे स्वर्ग, प्रकृतिलय और विदेह अवस्था को प्राप्त करने की तृष्णा। ○ दिव्य व अदिव्य विषय के साथ संबंध होने पर भी विषय-दोषों को ज्ञान-पूर्वक जान कर, राग-द्वेष रहित तृष्णा न रखकर वशीकार करना।
		क्रमश: वैराग्य की चार अवस्थायें	○ यतमान-वैराग्य में प्रयत्न से इन्द्रियों को विषयों में प्रवृत न होने देना। ○ व्यतिरेक-वैराग्य में इन्द्रियों का कुछ विषयों से हट जाना। ○ एकेन्द्रिय-वैराग्य में सब इन्द्रियों का विषयों से हट जाना, परन्तु मन में विषयों की तृष्णा (अर्थात् इच्छा + भ्रम) का बना रहना। ○ वशीकार-वैराग्य में चित्त और इन्द्रियाँ पर सम्पूर्ण वश में होना।
		दो प्रकार के वैराग्य	○ अपर-वैराग्य (अर्थात् देखे और सुने हुए विषयों के प्रति वैराग्य) सम्प्रज्ञात समाधि का उपाय। ○ पर-वैराग्य (अर्थात् प्रकृति के गुणों को प्राप्त करने की लालसा से रहित) असम्प्रज्ञात समाधि का उपाय है। पर वैराग्य ज्ञान की चरम सीमा है, और केवल्य वैराग्य का फल है। योगी मानता है की प्राप्त करने योग्य प्राप्त हो गया, पॉंच क्लेश नष्ट हो गए, और संस्कार चक्र छिन्न भिन्न हो चुका है।

		अभ्यास	○ बल, उत्साह और प्रयत्न पूर्वक चित्त की वृत्ति-रहती स्थिति में रखना अभ्यास है।
			○ अभ्यास को –
			    ○ निरन्तर
			    ○ दीर्घ काल तक
			○ सत्कार पूर्वक अर्थात् तप, ब्रह्मचर्य, विद्या और श्रद्धा पूर्वक करना

		पाँच उपाय-प्रत्यय प्रक्रिया	○ योग के प्रति श्रद्धा अर्थात् सत्य को धारण करने वाली अभिरुचि ○ श्रद्धा से वीर्य अर्थात् उत्साह ○ वीर्य से स्मृति ○ स्मृति से समाधि ○ सम्प्रज्ञात समाधि से ऋतंभरा प्रज्ञा अर्थात् विवेकख्याति
		मैत्री आदि उपाय	उपासना के लिये चित्त को प्रसन्न रखने के लिये, यह मैत्री आदि उपाय – ○ सुखी में मैत्री का भाव रखने से ईर्ष्या और राग के मल की निवृति ○ दुःखी में करुणा का भाव रखने से घृणा और द्वेष के मल की निवृति ○ पुण्य करने वालों में मुदित का भाव रखने से असूया के मल की निवृति ○ अपुण्य करने वालों में उपेक्षा (भावन रहित) रखने से द्वेष के मल की निवृति

		प्रतिपक्ष भावना	○ यम और नियम के विरोधी वितर्कों का विरोधी भाव अर्थात् गुणों के लाभ और दुर्गुणों की हानि को जान कर, दुर्गुणों के विपरीत सद्गुणों को स्थापित करना है।
			○

समाधि-पादः

अथ योगानुशासनम् ॥ १.१॥
योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ १.२॥
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ १.३॥
वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ १.४॥
वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः ॥ १.५॥
प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥ १.६॥
प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥ १.७॥
विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥ १.८॥
शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ १.९॥
अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥ १.१०॥
अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ॥ १.११॥
अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १.१२॥
तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १.१३॥
स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ॥ १.१४॥
दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥ १.१५॥
तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १.१६॥
वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् संप्रज्ञातः ॥ १.१७॥
विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥ १.१८॥
भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥ १.१९॥
श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ १.२०॥
तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ १.२१॥
मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः ॥ १.२२॥
ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ १.२३॥
क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ १.२४॥
तत्र निरतिशयं सार्वज्ञबीजम् ॥ १.२५॥
स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ १.२६॥
तस्य वाचकः प्रणवः ॥ १.२७॥
तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ १.२८॥
ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥ १.२९॥
व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वा
निचित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ १.३०॥
दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥ १.३१॥
तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ १.३२॥
मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां
भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ १.३३॥
प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ १.३४॥
विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धिनी ॥ १.३५॥
विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ १.३६॥
वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥ १.३७॥
स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ १.३८॥
यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ १.३९॥
परमाणु परममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ १.४०॥
क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु
तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ॥ १.४१॥
तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥ १.४२॥
स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥ १.४३॥
एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥ १.४४॥
सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम् ॥ १.४५॥
ता एव सबीजः समाधिः ॥ १.४६॥
निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ १.४७॥
ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ॥ १.४८॥
श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥ १.४९॥
तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥ १.५०॥
तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥ १.५१॥
॥ इति पतञ्जलि-विरचिते योग-सूत्रे प्रथमः समाधि-पादः ॥

साधन-पादः

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ २.१॥
समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २.२॥
अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥ २.३॥
अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ २.४॥
अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ २.५॥
दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ २.६॥
सुखानुशयी रागः ॥ २.७॥
दुःखानुशयी द्वेषः ॥ २.८॥
स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥ २.९॥
ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ २.१०॥
ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ २.११॥
क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥ २.१२॥
सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ २.१३॥
ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ २.१४॥
परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ २.१५॥
हेयं दुःखमनागतम् ॥ २.१६॥
द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ २.१७॥
प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं
भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥ २.१८॥
विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥ २.१९॥
द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥ २.२०॥
तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ॥ २.२१॥
कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥ २.२२॥
स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥ २.२३॥
तस्य हेतुरविद्या ॥ २.२४॥
तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ २.२५॥

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २.२६॥
तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥ २.२७॥
योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेकख्यातेः ॥ २.२८॥
यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २.२९॥
अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ २.३०॥
जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥ २.३१॥
शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ २.३२॥
वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ २.३३॥
वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका
मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥ २.३४॥
अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ २.३५॥
सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ २.३६॥
अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ २.३७॥
ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ २.३८॥
अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासम्बोधः ॥ २.३९॥
शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥ २.४०॥
सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शन-योग्यत्वानि च ॥ २.४१॥
संतोषादनुत्तमसुखलाभः ॥ २.४२॥
कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसः ॥ २.४३॥
स्वाध्यायाद् इष्टदेवतासंप्रयोगः ॥ २.४४॥
समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ २.४५॥
स्थिरसुखम् आसनम् ॥ २.४६॥
प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ २.४७॥
ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥ २.४८॥
तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ २.४९॥
बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ २.५०॥
बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ २.५१॥
ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ २.५२॥
धारणासु च योग्यता मनसः ॥ २.५३॥
स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ २.५४॥
ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ २.५५॥
॥ इति पतञ्जलि-विरचिते योग-सूत्रे द्वितीयः साधन-पादः ॥

विभूति-पादः

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ ३.१॥
तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ ३.२॥
तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ ३.३॥
त्रयमेकत्र संयमः ॥ ३.४॥
तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥ ३.५॥
तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ३.६॥
त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥ ३.७॥
तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥ ३.८॥
व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौनिरोधक्षणचित्तान्वयो
निरोधपरिणामः ॥ ३.९॥
तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥ ३.१०॥
सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥ ३.११॥
ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥ ३.१२॥
एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥ ३.१३॥
शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥ ३.१४॥
क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ ३.१५॥
परिणामत्रयसंयमाद् अतीतानागतज्ञानम् ॥ ३.१६॥
शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्
सङ्करस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ ३.१७॥
संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥ ३.१८॥
प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ ३.१९॥
न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ॥ ३.२०॥
कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे
चक्षुःप्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥ ३.२१॥
सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥ ३.२२॥
मैत्र्यादिषु बलानि ॥ ३.२३॥
बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ ३.२४॥
प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥ ३.२५॥
भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ ३.२६॥
चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ ३.२७॥
ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ ३.२८॥
नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ ३.२९॥
कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३.३०॥
कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥ ३.३१॥
मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३.३२॥
प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३.३३॥
हृदये चित्तसंवित् ॥ ३.३४॥
सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः
परार्थत्वात्स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् ॥ ३.३५॥
ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥ ३.३६॥
ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३.३७॥
बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च परशरीरावेशः ॥ ३.३८॥
उदानजयाज्जलपङ्कण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३.३९॥
समानजयाज्ज्वलनम् ॥ ३.४०॥
श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥ ३.४१॥
कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूल-समापत्तेश्चाकाशगमनम् ॥ ३.४२॥
बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥ ३.४३॥
स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद्भूतजयः ॥ ३.४४॥
ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥ ३.४५॥
रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ॥ ३.४६॥
ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥ ३.४७॥

ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥ ३.४८॥

सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वंसर्वज्ञातृत्वं च ॥ ३.४९॥

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ ३.५०॥

स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥ ३.५१॥

क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ३.५२॥

जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात् तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥ ३.५३॥

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयम् अक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ ३.५४॥

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥ ३.५५॥

॥ इति पतञ्जलि-विरचिते योग-सूत्रे तृतीयो विभूति-पादः ॥

कैवल्य-पादः

जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः ॥ ४.१॥

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ ४.२॥

निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥ ४.३॥

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४.४॥

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ४.५॥

तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ४.६॥

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ४.७॥

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ४.८॥

जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ४.९॥

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥ ४.१०॥

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥ ४.११॥

अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥ ४.१२॥

ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ ४.१३॥

परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ॥ ४.१४॥

वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ॥ ४.१५॥

न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥ ४.१६॥

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥ ४.१७॥

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥ ४.१८॥

न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥ ४.१९॥

एकसमये चोभयानवधारणम् ॥ ४.२०॥

चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ॥ ४.२१॥

चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥ ४.२२॥

द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥ ४.२३॥

तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥ ४.२४॥

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः ॥ ४.२५॥

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥ ४.२६॥

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥ ४.२७॥

हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥ ४.२८॥

प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥ ४.२९॥

ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ ४.३०॥

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥ ४.३१॥

ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥ ४.३२॥

क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥ ४.३३॥

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं
स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ ४.३४॥

॥ इति पतञ्जलि-विरचिते योग-सूत्रे चतुर्थः कैवल्य-पादः ॥

॥ इति श्री पातञ्जल-योग-सूत्राणि ॥